

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 29: नारद का उपदेश

21 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



देवर्षि नारद राजा प्राचीनबर्हि को पुरज्जन की कथा का गूढ़ अर्थ खोलते हैं, राजा के हृदय को अन्ततः रिक्त कर्मकाण्ड से भगवान् की प्रेममयी उपासना की ओर मोड़ते हुए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

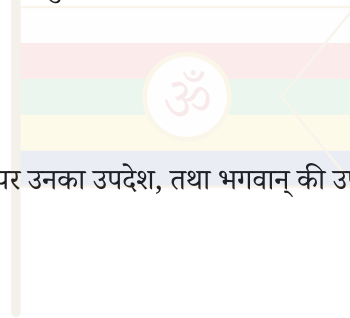
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विङ्गडम् में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, पुरज्जन की कथा मुक्ति में समाप्त हुई, जैसे आत्मा भीतर के अज्ञात मित्र द्वारा जगाई गई। यह एकोनत्रिंश अध्याय उस कथा का कोमल परिणाम है। राजा प्राचीनबर्हि, यद्यपि उन्होंने सम्पूर्ण कथा सुन ली है, विनम्रता से स्वीकार करते हैं कि वे अब भी उसका गूढ़ अर्थ नहीं

समझ सकते, क्योंकि उनका मन कर्मकाण्ड के प्रति आसक्ति से मोहित है। अतः नारद धैर्यपूर्वक उसका अनावरण करते हैं: पुरञ्जन आत्मा है, जो अपने लिए शरीर-दर-शरीर गढ़ती है; नौ द्वारों वाली नगरी शरीर है, उसकी रानी बुद्धि, उसके उद्यान तथा द्वार इन्द्रियाँ; चण्डवेग तथा कालकन्या काल का बीतना तथा वृद्धावस्था हैं; और अज्ञात मित्र भीतर मौन साक्षी रूप में विराजमान भगवान् है। बन्धन, नारद सिखाते हैं, शरीर तथा मन को आत्मा समझने से उपजता है; और मुक्ति आत्म-ज्ञान से और, सबसे बढ़कर, भगवान् की प्रेममयी उपासना से आती है, जिनमें सम्पूर्ण संसार विश्राम करता है। अन्ततः प्रबुद्ध होकर, प्राचीनबर्हि कर्मकाण्ड से सच्ची भक्ति की ओर मुड़ते हैं। यह इस बारे में है कि एक पावन कथा, सही रूप से समझी जाए, तो गहनतम सन्देह को कैसे काट देती है — और उस एक परामर्श के बारे में जो सबका उत्तर देता है: श्रीहरि की अपने समस्त अस्तित्व से उपासना करो।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 29 (एकोनत्रिंश अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: नारद द्वारा अन्योक्ति का अर्थ-प्रकाशन तथा भक्ति-मार्ग का उपदेश
- मुख्य वक्ता: देवर्षि नारद, राजा प्राचीनबर्हि को सम्बोधित करते हुए (मैत्रेय के विदुर को उपदेश के भीतर)
- मुख्य श्रोता: राजा प्राचीनबर्हि (तथा विदुर)
- मुख्य स्थल: राजा प्राचीनबर्हि का दरबार
- केन्द्रीय विषय: नारद द्वारा कथा के अर्थ का स्पष्टीकरण, बन्धन तथा मुक्ति पर उनका उपदेश, तथा भगवान् की उपासना का परामर्श
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 29, श्लोक 1-85
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 28 ने पुरञ्जन की कथा पूर्ण की, आत्मा को पुनर्जन्म लेते, शोक करते, और अन्ततः भीतर के अज्ञात मित्र द्वारा अपने सच्चे स्वरूप की स्मृति के लिए जगाए जाते दिखाते हुए। यह एकोनत्रिंश अध्याय कथा का उसके स्पष्टीकरण सहित अनुगमन करता है, जैसे राजा प्राचीनबर्हि नारद से वह खोलने को कहते हैं जो उन्होंने अभी नहीं समझा, और नारद उन्हें अर्थ — तथा उससे परे का मार्ग — सिखाते हैं।

राजा की विनम्र स्वीकारोक्ति

सम्पूर्ण कथा सुनकर, राजा प्राचीनबर्हि ने समझने का बहाना नहीं किया। विनम्रता से उन्होंने नारद के समक्ष स्वीकार किया कि उनके जैसे व्यक्ति द्वारा उनके वचन पूर्णतः नहीं समझे गए — कि बुद्धिमान् उनका अर्थ ग्रहण कर सकते हैं, किन्तु वे, कर्मकाण्ड के प्रति अपनी लम्बी आसक्ति से मोहित, नहीं।

प्राचीनबर्हिरुवाच

भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते ।

कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥ १ ॥

prācīnabarhir uvāca bhagavaṁs te vaco 'smābhir na samyag avagamyate kavayas tad vijānanti na vyaṁ karma-mohitāḥ

अर्थ: प्राचीनबर्हि ने कहा: हे भगवन्, आपके वचन हमारे द्वारा पूर्णतः नहीं समझे जाते; बुद्धिमान् उन्हें ग्रहण करते हैं, किन्तु हम, कर्म से मोहित, नहीं। (स्कन्ध 4, अध्याय 29, श्लोक 1)



राजा प्राचीनबर्हि विनम्रता से नारद के समक्ष स्वीकार करते हैं कि, कर्मकाण्ड के प्रति अपनी लम्बी आसक्ति से मोहित, वे अभी कथा का गूढ़ अर्थ नहीं समझ सकते (श्लोक 1-2)।

नारद अर्थ का अनावरण करते हैं

अतः नारद ने धैर्यपूर्वक अन्योक्ति को खोला। “पुरुष,” पुरुञ्जन को, उन्होंने कहा, आत्मा जानो — वह जीव जो अपने लिए, जन्म-मरण-जन्म, एक, दो, तीन, चार, या अनेक पैरों वाला, या बिना पैर का शरीर गढ़ता है, संसार की समस्त योनियों में।

नारद उवाच

पुरुषं पुरुञ्जनं विद्याद्यद् व्यनक्त्यात्मनः पुरम् ।

एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम् ॥ २ ॥

nārada uvāca puruṣaṁ purañjanaṁ vidyād yad vyanakty ātmanaḥ puram eka-dvi-tri-catuṣ-pādaṁ bahu-pādam apādakam

अर्थ: नारद ने कहा: “पुरुष,” पुरुञ्जन को आत्मा जानो, जो अपने लिए एक, दो, तीन, चार, अनेक, या बिना पैर का शरीर गढ़ती है, समस्त योनियों में। (स्कन्ध 4, अध्याय 29, श्लोक 2)



नारद धैर्यपूर्वक अन्योक्ति का अनावरण करते हैं — आत्मा उस निवासी के रूप में जो शरीर-दर-शरीर गढ़ती है, नौ द्वारों वाली नगरी शरीर के रूप में, उसके द्वार तथा उद्यान इन्द्रियों के रूप में (श्लोक 2-25)।

फिर उन्होंने कथा को अंश-दर-अंश खोला: नलिनी तथा नालिनी नामक दो द्वार नासिका हैं; गन्ध, रस, नेत्र, कान, तथा समस्त छिद्रों का अपना-अपना स्थान है; रानी बुद्धि है, भीतर का मित्र परम भगवान्। उन्होंने दिखाया कि कैसे आत्मा, स्वयं को भूलकर, मन तथा इन्द्रियों का जहाँ भी वे ले जाएँ अनुसरण करती है, अपने कर्मों के फल एकत्र करती और जन्म से जन्म भटकती हुई।

भक्ति ही मुक्ति प्रदान करती है

उपाय बताने से पहले, नारद एक और भी गहरी बात कहते हैं। आत्मा का वास्तविक हित, वे कहते हैं, केवल इतना है कि भौतिक बन्धन से उत्पन्न होने वाली अवांछित कठिनाइयों की अनन्त शृंखला समाप्त हो जाए — और यह शृंखला केवल गुरु के माध्यम से भगवान् को अर्पित परम, अनन्य भक्ति से ही कटती है। वैदिक कर्मकाण्ड, दार्शनिक अध्ययन, यहाँ तक कि योग-साधना भी, अकेले, न तो आसक्ति को जड़ से उखाड़ सकते हैं और न आत्म-ज्ञान दे सकते हैं। केवल वासुदेव पर स्थिर भक्तियोग ही दोनों एक साथ करता है — वही संसार से सच्चे वैराग्य को तथा निर्मल ज्ञान को जन्म देता है। इसीलिए नारद, स्वयं शास्त्रों के मर्मज्ञ होते हुए भी, राजा को और अधिक कर्मकाण्ड नहीं बताते; वे प्रेम बताते हैं।

अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरम्परा ।

संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या परमया गुरौ ॥ ३६ ॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः ।

सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥ ३७ ॥

athātmano 'rtha-bhūtasya yato 'nārtha-paramparā saṁśṛtis tad-vyavacchedo bhaktyā paramayā gaurau

vāsudeve bhagavati bhakti-yogaḥ samāhitaḥ sadhrīcīnena vairāgyaṁ jñānaṁ ca janayisyati

अर्थ: आत्मा का वास्तविक हित केवल बन्धन से उत्पन्न अवांछित कठिनाइयों की अनन्त शृंखला को समाप्त करने में है, और यह बन्धन केवल गुरु के माध्यम से भगवान् की परम भक्ति से कटता है; जब भक्तियोग वासुदेव पर स्थिर होता है, तो वही सच्चा वैराग्य तथा वास्तविक ज्ञान उत्पन्न करता है। (स्कन्ध 4, अध्याय 29, श्लोक 36–37)

महानतम ऋषि भी उन्हें पूर्णतः नहीं जानते

तब नारद स्वयं की भी एक विनम्र स्वीकारोक्ति जोड़ते हैं। ब्रह्मा, सृष्टिकर्ताओं में सर्वाधिक शक्तिशाली; शिव; मनु तथा मानवता के महान् प्रजापति; सनक-आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारी; सप्तर्षि; और स्वयं नारद — इनमें से कोई भी उत्कृष्ट, मुक्त आत्मा, अपनी समस्त तपस्या, विद्या तथा समाधि के बावजूद, उस भगवान् को पूर्णतः नहीं जान पाई जिन्हें वे देखते हैं (श्लोक 42–44)। वैदिक यज्ञ तथा देवताओं की उपासना, चाहे कितनी ही श्रद्धा से की जाए, वह ज्ञान भी नहीं दे सकते; वह तभी आता है जब भगवान्, किसी भक्त की प्रेममयी सेवा से प्रसन्न होकर, स्वयं को एक अनर्जित वरदान के रूप में प्रकट करने का चुनाव करते हैं (श्लोक 45–46)। यह बात चौंकाने वाली है: न तपस्या और न विद्वत्ता, चाहे कितनी ही विशाल हो, भगवान् को स्वयं को प्रकट करने के लिए बाध्य कर सकती है। यही कारण है कि नारद, ऋषियों में ऋषि होते हुए भी, राजा प्राचीनबर्हि को तर्क से नहीं बल्कि कथा तथा समर्पण से सिखाते हैं — भगवान् प्रमाण-पत्रों के आगे नहीं, प्रेम के आगे झुकते हैं।

वह मन जो हमें ले जाता है

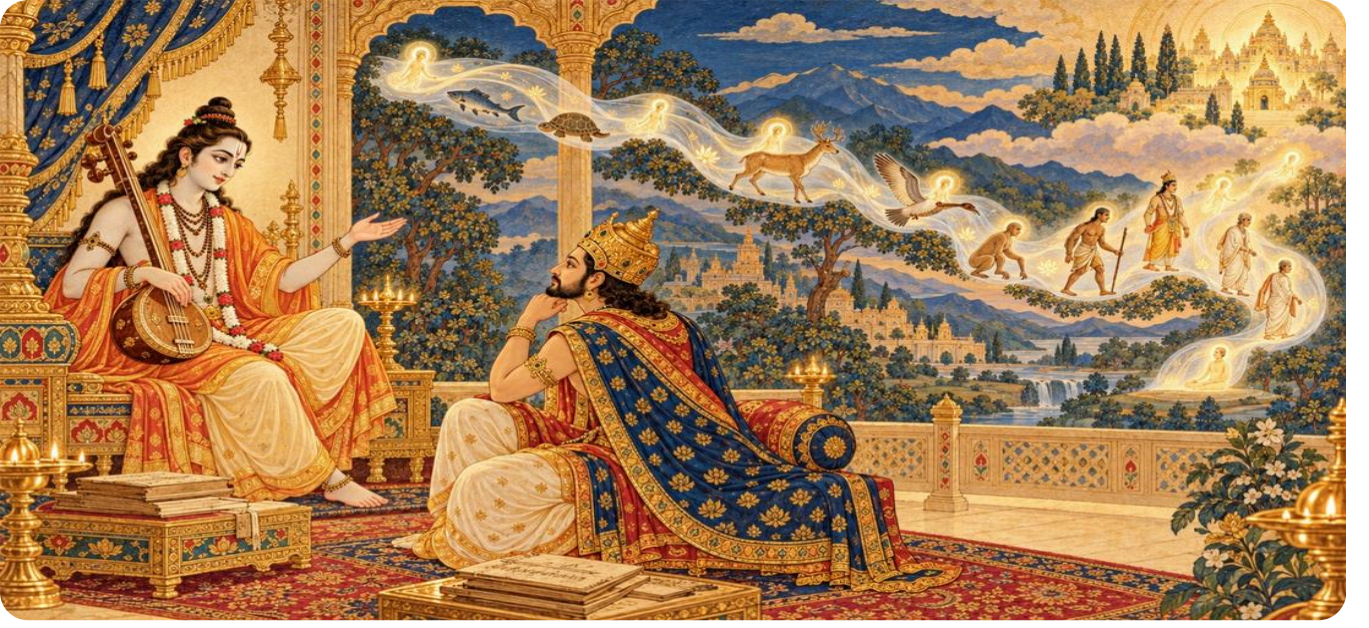
तब नारद ने वह गहन सत्य सिखाया कि हम कैसे जीवन से जीवन ले जाए जाते हैं। आत्मा, उन्होंने कहा, अपने सूक्ष्म शरीर — अपने समस्त संचित संस्कारों सहित मन — से आच्छादित, अपने पूर्व शरीर से खींचे विचार तथा प्रतिमाएँ विकसित करती है; और यह निश्चित जानो, उन्होंने जोड़ा: बिना पूर्व अनुभव के मन में कोई कल्पना उपज ही नहीं सकती। अतः यह मन ही है, हमारे कर्मों की स्मृतियों तथा इच्छाओं से लदा, जो आत्मा को मृत्यु की देहरी के पार ले जाता है और आने वाले जन्म को गढ़ता है।

तेनास्य तादृशं राजल्लिङ्गिनो देहसम्भवम् ।

श्रद्धत्स्वाननुभूतोऽर्थो न मनः स्प्रष्टुमर्हति ॥ ६५ ॥

tenāsya tādṛśaṁ rājaṁ līṅgino deha-sambhavam śraddhatsvānanubhūto 'rtho na manaḥ spraṣṭum arhati

अर्थ: अतः, हे राजन्, आत्मा, अपने सूक्ष्म शरीर से आच्छादित, अपने पूर्व शरीर से जन्मी प्रतिमाएँ वहन करती है; इसे निश्चित जानो — मन उस किसी वस्तु की कल्पना नहीं कर सकता जिसे उसने पहले अनुभव न किया हो। (स्कन्ध 4, अध्याय 29, श्लोक 65)



नारद पुनर्जन्म का गहन सत्य सिखाते हैं: कि मन, हमारे कर्मों के संस्कारों तथा इच्छाओं से लदा, आत्मा को एक जीवन से अगले तक ले जाता है और आने वाले जन्म को गढ़ता है (श्लोक 60-70)।

एकमात्र औषधि: भगवान् की उपासना

बन्धन का सम्पूर्ण तन्त्र दिखाकर — आत्मा का भूलना, शरीर तथा मन से उसका तादात्म्य, इच्छा से चालित उसका भटकाव — नारद अब वह एकमात्र औषधि प्रस्तुत करते हैं जो इस सबको खोल देती है: अपना सम्पूर्ण हृदय श्रीहरि की प्रेममयी सेवा में अर्पित करो, और सम्पूर्ण सृष्टि को उन्हीं के साक्षात् स्वरूप के रूप में देखना सीखो — वह एकमात्र स्रोत जिससे यह उठती है, जिसमें यह टिकी रहती है, और जिसमें अन्ततः यह विलीन हो जाती है।

अतस्तदपवादार्थं भज सर्वार्त्माना हरिम् ।

पश्यंस्तदात्मकं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्यया यतः ॥ ७९ ॥

atas tad apavādārthaṁ bhaja sarvātmanā harim paśyaṁs tad-ātmakaṁ viśvaṁ sthity-utpatty-apyayā yataḥ

अर्थ: अतः, उस बन्धन को दूर करने के लिए, श्रीहरि की अपने समस्त अस्तित्व से उपासना करो, सम्पूर्ण संसार को उनसे भरा देखते हुए, जिनसे उसकी सृष्टि, पालन, तथा प्रलय आते हैं। (स्कन्ध 4, अध्याय 29, श्लोक 79)

उन्होंने राजा को आश्चस्त किया कि कर्मकाण्ड, चाहे कितने ही भव्य, आत्मा को मुक्त नहीं कर सकते, क्योंकि वे उसे केवल नए फलों से बाँधते हैं; किन्तु भगवान् के प्रति प्रेममयी भक्ति, तथा उससे आने वाला आत्म-ज्ञान, बन्धन की जड़ काटते हैं और आत्मा को घर ले जाते हैं।

सन्देह का कट जाना

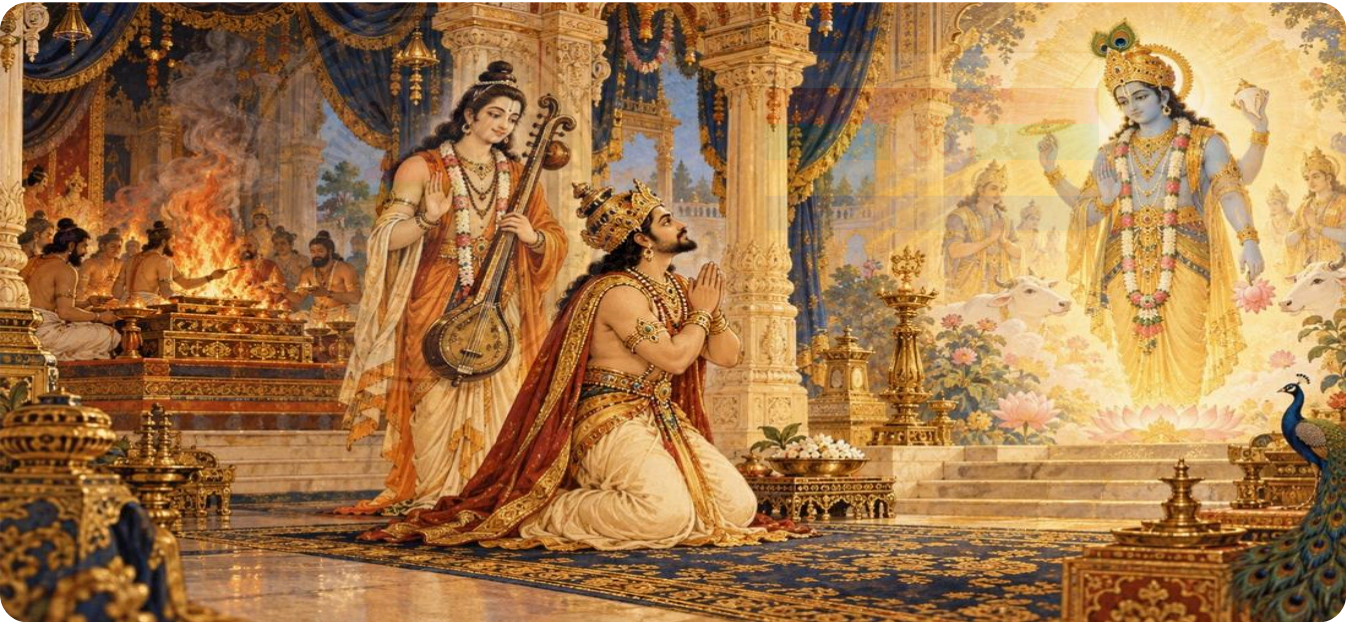
और नारद ने सम्पूर्ण उपदेश के फल के साथ समाप्त किया। यह विस्मयकारी आध्यात्मिक अन्योक्ति, प्रतीक में गुप्त, उन्होंने स्वयं अपने गुरु से पाई थी; और जो कोई इसे समझता है, उन्होंने कहा, वह शरीर की धारणा से मुक्त हो जाता है, और आत्मा के विषय में, तथा मृत्यु के परे के जीवन के विषय में सन्देह, स्वच्छ कट जाता है।

अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाधिगतमद्भुतम् ।

एवं स्त्रियाश्रमः पुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः ॥ ८५ ॥

*adhyātma-pāroṣyam idaṁ mayādhigatam adbhutam evaṁ striyāśramaḥ puṁsaś chinno
'mutra ca saṁśayaḥ*

अर्थ: यह विस्मयकारी आध्यात्मिक अन्योक्ति, प्रतीक में गुप्त, मैंने पाई है; इससे आत्मा के तथा परलोक के विषय में सन्देह कट जाता है।
(स्कन्ध 4, अध्याय 29, श्लोक 85)



अन्ततः प्रबुद्ध होकर, राजा प्राचीनबर्हि रिक्त कर्मकाण्ड से भगवान् की प्रेममयी उपासना की ओर मुड़ते हैं, आत्मा तथा परलोक के विषय में उनका सन्देह नारद के उपदेश से स्वच्छ कट गया (श्लोक 79-85)।

इस उपदेश से प्रबुद्ध होकर, राजा प्राचीनबर्हि ने अपना हृदय कर्मकाण्ड के अनन्त दौर से भगवान् की प्रेममयी उपासना की ओर मोड़ा। इस प्रकार एकोनत्रिंश अध्याय राजा के जागरण के साथ समाप्त होता है — अपने यज्ञों को पीछे छोड़ने तथा भक्ति के मार्ग को ग्रहण करने को तैयार, जिसका कथा आगे के अध्यायों में अनुगमन करेगी।

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. विनम्रता समझ का आरम्भ है। प्राचीनबर्हि उसे समझने का बहाना नहीं करते जो उन्होंने नहीं समझा; वे अपनी भ्रान्ति स्वीकार करते तथा पूछते हैं। “मैं नहीं समझता” कहना सिखाए जाने की ओर पहला पग है (श्लोक 1)।
2. आत्मा अपना निवास स्वयं गढ़ती है। पुरज्जन आत्मा है, समस्त योनियों में शरीर-दर-शरीर गढ़ती हुई। हम घर नहीं बल्कि निवासी हैं, अपनी इच्छाओं के अनुसार रूप-दर-रूप ग्रहण करते हुए (श्लोक 2)।
3. मन हमें मृत्यु के पार ले जाता है। सूक्ष्म मन, हमारे कर्मों के संस्कारों से लदा, आत्मा को अगले जन्म में ले जाता है। हम अभी अपने मन को जिससे भरते हैं वही हमारे बनने का बीज है (श्लोक 65)।
4. भक्ति ही सच्चा वैराग्य तथा ज्ञान देती है। कर्मकाण्ड, अध्ययन तथा योग-साधना, चाहे कितनी ही कठोरता से किए जाएँ, अकेले हृदय को मुक्त नहीं कर सकते; केवल वासुदेव पर स्थिर भक्तियोग ही आसक्ति को जड़ से उखाड़ता तथा सच्चा आत्म-ज्ञान प्रकट करता है (श्लोक 36-37)।
5. भगवान् की प्रेममयी उपासना एकमात्र औषधि है। नारद का सम्पूर्ण उपदेश एक ही बिन्दु पर टिकता है: श्रीहरि के प्रति सम्पूर्ण समर्पण करो और सम्पूर्ण सृष्टि को उन्हीं में विश्राम करता देखो। भक्ति, तथा वह दृष्टि जो वह देती है, बन्धन की जड़ काटती है (श्लोक 79)।
6. न तपस्या, न विद्वत्ता भगवान् के प्रकट होने को बाध्य कर सकती है। ब्रह्मा, शिव, मनु, सनक-आदि तथा सप्तर्षि जैसे महानतम ऋषि भी तप या विद्या मात्र से उन्हें पूर्णतः नहीं जानते; वे केवल प्रेममयी भक्ति के उत्तर में स्वयं को प्रकट करते हैं (श्लोक 42-46)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के राजा प्राचीनबर्हि के साथ व्यवहार के ढंग में कुछ गहराई से आश्चर्य करने वाला है। उन्होंने अभी समस्त शास्त्रों की सबसे सुन्दर तथा परतदार कथाओं में से एक सुनी है — और वे स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि उन्होंने उसे पूर्णतः नहीं समझा। और नारद उन्हें न डाँटते हैं न आगे बढ़ते हैं; वे, मानो, बैठ जाते हैं, और उसे पुनः, धैर्यपूर्वक, प्रतीक-दर-प्रतीक समझाते हैं। यह इस बात का चित्र है कि पवित्र वास्तव में हम पर कैसे कार्य करता है: विरले ही एक साथ, प्रायः सुनने तथा पुनः सुनने से, जो हम चूक गए उसे विनम्रता से स्वीकार करने तथा पुनः दिखाए जाने को माँगने से। प्राचीनबर्हि की स्वीकारोक्ति — “बुद्धिमान् समझते हैं, किन्तु हम, अपने कर्म से मोहित, नहीं” — एक ऐसी है जिसे हममें से अनेक ईमानदारी से कर सकते हैं, और अध्याय की कोमलता यह है कि ऐसी स्वीकारोक्ति मार्ग का अन्त नहीं बल्कि प्रकाश का आरम्भ है। और ध्यान दें कि नारद का समस्त सावधान स्पष्टीकरण अन्ततः कहाँ उतरता है। अन्योक्ति के प्रत्येक द्वार तथा उद्यान को खोलने के बाद, आत्मा के बन्धन तथा उसे जीवन से जीवन ले जाने वाले मन के सम्पूर्ण तन्त्र को अनावृत करने के बाद, उनका निष्कर्ष महारत के लिए एक सूक्ष्म दर्शन नहीं बल्कि करने के लिए एक सरल कार्य है: *श्रीहरि की अपने समस्त अस्तित्व से उपासना करो*। समस्त विश्लेषण इस एक लक्ष्य की सेवा करता है — हृदय को, अन्ततः, पाने तथा करने के अनन्त श्रम से भगवान् के प्रेममय स्मरण की ओर मोड़ना, जिनमें सब कुछ विश्राम करता है। अध्याय हमें बताता है कि गहनतम सन्देह चतुराई से नहीं बल्कि भक्ति से कटता है, और कि समझने का सम्पूर्ण अभिप्राय हमें, विनम्र तथा जागृत, भगवान् के समक्ष घुटनों पर लाना है।

एक दैनिक भाक्ते-अभ्यास

आज, प्राचीनबर्हि की विनम्रता का अभ्यास करें तथा नारद के परामर्श पर कार्य करें। पहले, अपने आध्यात्मिक जीवन के किसी क्षेत्र में जहाँ आप वास्तव से अधिक समझने का बहाना करते रहे हैं, चुपचाप स्वीकार करें — जैसे राजा ने किया — “मैं इसे पूर्णतः नहीं समझता,” और सिखाए जाने को माँगें, चाहे शास्त्र, किसी बुद्धिमान् मित्र, या प्रार्थना के माध्यम से। विनम्रता वह द्वार खोलती है जिसे अभिमान बन्द रखता है। फिर, नारद की एक औषधि लें और उसे ठोस बनाएँ: आज कुछ मिनट “श्रीहरि की अपने समस्त अस्तित्व से उपासना करें” — अनन्त करने को एक ओर रखें, भगवान् के समक्ष बैठें, और उन्हें अपना समस्त ध्यान इन शब्दों के साथ अर्पित करें — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय”, प्रयत्न करते हुए, संक्षेप में भी, सम्पूर्ण संसार को उनसे भरा देखने का। जो आप नहीं जानते उसे स्वीकार करने तथा, चाहे कितना ही सरलता से, उपासना की ओर मुड़ने में, आप राजा का अनुसरण मोहित कर्मकाण्ड से सच्ची भक्ति के आरम्भ तक करते हैं।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का एकोनत्रिंश अध्याय पुरज्जन की कथा का कोमल परिणाम है। सम्पूर्ण कथा सुनकर, राजा प्राचीनबर्हि विनम्रता से स्वीकार करते हैं कि वे अभी उसका गूढ़ अर्थ नहीं समझ सकते, कर्मकाण्ड के प्रति आसक्ति से मोहित होकर। नारद इसलिए अन्योक्ति को क्रमशः पुनः खोलते हैं: देहधारी आत्मा की नौ-द्वारों वाली अपनी ही नगरी में उसकी रानी बुद्धि तथा उसके अनेक उद्यान-द्वार इन्द्रियाँ खड़ी हैं, जबकि चण्डवेग तथा कालकन्या क्रमशः काल के आगे बढ़ने तथा निकट आती वृद्धावस्था को दर्शाते हैं, और वह पहले अज्ञात साथी स्वयं भगवान् सिद्ध होता है, जो सदा साक्षी-आत्मा रूप में विद्यमान रहते हैं। वे दिखाते हैं कि यही मन तथा संस्कारों का सूक्ष्म आवरण आत्मा को एक शरीर से दूसरे में ले जाता है, कि सृष्टि के महानतम रचयिता भी केवल तपस्या या विद्या से भगवान् को नहीं जानते, तथा कि फल की आशा से किया गया कर्मकाण्ड उसी गाँठ को और कस देता है जिसे वह खोलना चाहता है। इस सबके मूल में एक ही सूत्र है — भक्ति: हृदय को वासुदेव पर स्थिर करना ही आसक्ति को घोलता तथा सच्चे ज्ञान को उद्घाटित करता है, और श्रीहरि को सृष्टि, पालन तथा संहार के स्रोत रूप में समर्पित हो जाना ही वह एकमात्र औषधि है जो हर बन्धन को खोल देती है। इस पावन अन्योक्ति से, नारद घोषित करते हैं, आत्मा तथा मृत्यु-पश्चात् के जीवन के विषय में सन्देह स्वच्छ कट जाता है। इस प्रकार प्रबुद्ध राजा अपने यज्ञों को पीछे छोड़कर सच्ची भक्ति के मार्ग पर बढ़ते हैं — यह सिखाते हुए कि गहनतम सन्देह का उत्तर चतुराई या प्रमाण-पत्रों से नहीं, बल्कि भगवान् की प्रेममयी उपासना से मिलता है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, *श्रीमद्भागवत महापुराण* (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, एकोनत्रिंश अध्याय।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-29-narada-explains-the-parable-and-teaches-devotion-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

